गीत रचना मेरी रचनात्मक विवशता है : शान्ति सुमन

❑ निर्मल मिलिन्द

डॉ0 शान्ति सुमन गीतों के संसार का सुपरिचित नाम हैं। एम0 डी0 डी0 एम0 कॉलेज मुजफ्फरपुर में हिन्दी विभाग की प्रोफेसर शान्ति सुमन का पहला नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' सन् 1970 में प्रकाशित हुआ जबकि दूसरा नवगीत संग्रह 'परछाईं टूटती' सन् '78 में छपा। 'सुलगते पसीने' सन् '79 में, 'पसीने के रिश्ते' '80 में तथा 'मौसम हुआ कबीर' सन् '85 में छपे। ये तीनों संग्रह जनवादी गीतों के संग्रह हैं। डॉ0 शान्ति सुमन का शोध प्रबंध 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' प्रकाशनाधीन है। शान्ति जी ने नवगीत पत्रिका 'अन्यथा' तथा जनवादी पत्रिका 'बीज' का भी संपादन किया है। इनके गीतों और निबंधों का प्रकाशन अनेक पत्र–पत्रिकाओं में होता रहा है। जमशेदपुर की साहित्यिक संस्था 'सृजन' के हाल–हाल में ही संपन्न काव्य आयोजन के अवसर पर शान्ति सुमन की गीत धारा के माध्यम से आधुनिक हिन्दी गीत जगत के विभिन्न वैचारिक पड़ावों की पड़ताल करने के लिए यह साक्षात्कार समायोजित किया गया।

पाठकों के लिए प्रश्न और उत्तर प्रस्तुत हैं –

प्रश्न – आपकी साहित्यिक यात्रा की शुरूआत कब हुई ? अपने गीतों के विकास के बारे में कहें ?

उत्तर – मेरी साहित्य यात्रा की शुरूआत माध्यमिक शिक्षा के दौरान बचपन में ही हो गयी थी, किन्तु इसमें स्थायित्व और स्तरीयता सन् 60 के बाद आयी। मेरी दृष्टि में किसी भी कला संस्कृति का मूलाधार अर्थव्यवस्था होती है। जाहिर है मूलाधार में परिलक्षित होने वाले परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब कमोबेश कला–संस्कृति में अवश्य होता है। इसलिए मेरी रचनाओं में भी समाज व्यवस्था में आने वाली तब्दीलियों का कालानुसार प्रक्षेपण होता रहा है। वैचारिक अंतर्वस्तु में आनेवाले परिवर्तन के समानांतर मेरे गीतों में भी बदलाव आये हैं। यह प्रक्रिया सायास नहीं हुई है। दरअसल मैं रूप और वस्तु की द्वन्द्वात्मक एकता में विश्वास करती हूँ।

प्रश्न – कविता और गीत के अन्तर्सम्बन्ध के बारे में आपके विचार क्या है ? आपने गीत विधा ही क्यों चुनी ?

उत्तर – कविता कभी भी छंद मुक्त नहीं होती। केवल छंद के रूप बदल जाते हैं। मात्रिक और वर्णिक छन्दोबद्ध रचनाओं (कविताओं) में भी गद्यात्मकता होती है और गद्य में भी कविता के तत्त्व पाये जाते हैं। यह बात अलग है कि आजकल बन्धनमुक्त छंदों का कविता में इस्तेमाल का प्रचलन अधिक है। मैं मूलतः गीतकार हूँ। गीत मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता और उपयोगिता अक्षुण्ण है। यह श्रम शक्ति को संघटित और गतिशील करने तथा श्रम शक्ति के ह्रास से उत्पन्न तनाव और थकान को कम करने का सबसे कारगर हथियार है। गीत रचना मेरी रचनात्मक विवशता है। मैं अपने विचारों और भावों को गीत के माध्यम से व्यक्त करने में सहुलियत महसूस करती हूँ। हर रचनाकार अपनी सुविधा और अन्तर्निष्ठा के अनुसार ही अभिव्यक्ति का माध्यम (विधा) चुनता है। कोई भी विधा कमजोर नहीं होती और हर विधा की अपनी–अपनी सीमाएँ होती हैं। मगर महान रचनाकार विद्यागत सीमा का अतिक्रमण करता है और विद्या को विकसित करने में अपनी भूमिका निभाता है। विधा की सीमाओं को वह बेरहमी से तोड़ता भी है। गीत रचना में शब्दों की ध्वनि और ध्वनि के अनुगूंजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व है।

प्रश्न – क्या विचारधारा के द्वन्द्व का महत्व आपकी दृष्टि में है ?

उत्तर – हर रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। हर समय प्रगतिशील और प्रतिगामी तथा जनवादी और जनविरोधी विचारधाराओं में तीव्र (हिंस्र) संघर्ष होता है। मैंने हमेशा अपने गीतों में विचारधारा के इसी द्वन्द्व और सामाजिक चेतना के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। विभिन्न संघर्षशील इलाकों, तबकों और जन समुदायों में मेरे गीतों का इस्तेमाल किया जाना इसका सबूत है।

प्रश्न – गीत रचना के संबंध में आपकी अवधारणा क्या है ?

उत्तर – गीत रचना के अपने नियम होते हैं, अपना अनुशासन होता

है। गीत रचना में रूप और वस्तु की द्वन्द्वात्मक एकता अगर नहीं है तो वह कम से कम गीत नहीं है, कोई और चीज है। गीत रचना को लोकप्रिय और संवेदनात्मक बनाने के वास्ते संगीत, लोकधुनों, लोक मुहावरों और लोकशब्दावलियों का प्रयोग नितांत आवश्यक है। लेकिन इन सामग्रियों का व्यवहार सावधानीपूर्वक आन्तरिक जरूरत के तहत होना चाहिए। अन्यथा गीत के रूपवाद और सरलीकरण की गिरफ्त में आ जाने का खतरा हमेशा मौजूद रहता है। रचनाकार की जनजीवन में पैठ जितनी गहरी होगी रचना उतनी ही दुहरी और भाव प्रवण होगी तथा रचना के लिए कच्चे माल का भी प्राचुर्य होगा। जनजीवन से रचनाकार की दूरी वैचारिक रिक्तता का कारक होती है। ऐसी स्थिति में रचनाकार अपनी रिक्तता को ढँकने के लिए कला का अतिरिक्त सहारा लेता है। फलस्वरूप रचना रूपवाद के शिकंजे में फंसकर अमूर्तन का शिकार हो जाती है।

प्रश्न – क्या कविता और गीत एक दूसरे के पूरक हैं ?

उत्तर – गीत मनःस्थितियों का काव्य है और कविता परिस्थितियों का तथा गीत में शब्दों के ध्वन्यात्मक सौंदर्य और अनुगूंजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व होता है। जबकि कविता में शब्दों के अर्थानुभवों, अर्थों की लय और अर्थ विश्लेषण की अपूर्व शक्ति अन्तर्निहित होती है। तात्पर्य है कि गीत और कविता परस्पर विरोधी नहीं प्रत्युत एक दूसरे की पूरक विधाएं हैं। जिस तरह अच्छी कविता के लिए गहरी भाव–प्रवणता, सघन अनुभूति, सहज काव्य भाषा और संप्रेषण में सहायक बिम्ब–प्रतीकों की उपस्थिति अविवार्य है उसी तरह अच्छे और कालजयी गीतों की रचना के लिए विचारधारात्मक तथा सौंदर्यात्मक होना निहायत जरूरी है। मौजूदा दौर के गीतों का वैचारिक आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और जनवादी विचारधारा है। मेरी रचनाओं में बिम्ब–प्रतीक विचारधारा की मांग यानी जरूरत के मुताबिक व्यवहृत होते हैं। जैसी वस्तु वैसा रूप।

प्रश्न – क्या आज जनसाधारण और गीत में संवादहीनता की स्थिति है ?

उत्तर – जनसाधारण और साहित्य (कविता या गीत) के बीच संवादहीनता है, यह एक बुर्जुआ प्रचार है। मैं अपने अनुभव से जानती हूँ कि कविता और गीतों का जन सामान्य के साथ संपर्क निरंतर बढ़

रहा है। हर जन पक्षधर रचनाकार का दायित्व यहीं दुहरा हो जाता है। उन्हें प्रथमतः अपनी रचना का स्तर जन स्वाद के स्तर के अनुरूप रखना होता है और धीरे–धीरे अपनी रचना का स्तर ऊपर उठाना होता है ताकि रचना के साथ–साथ जनता की मानसिकता का स्तरोन्नयन हो सके। रमेश रंजक, नचिकेता, अश्वघोष, गोरख पांडेय, महेन्द्र नेह, देवेन्द्र कुमार आर्य, महेश्वर, विजेन्द्र अनिल, रामकुमार कृषक आदि गीतकारों के व्यापक जनसमर्थन और जबान पर चढ़ जाने का यही राज है।

प्रश्न – नवगीत और जनवादी गीत का वैचारिक अन्तर क्या है ?

उत्तर – नवगीत रचना का मुख्य वैचारिक आधार आधुनिकतावाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद है, जबकि समकालीन जनवादी गीत–रचना का वैचारिक आधार वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय जीवन–दृष्टि और सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण से लैस समाजवादी यथार्थवाद है। नवगीत मूलतः मध्यवर्गीय जनजीवन की निराशा और असमंजस का दस्तावेज है और जनवादी गीत संघर्षशील मेहनतकश अवाम की मुक्ति कामना का शंखनाद। नवगीत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों और विघटन का एहसास भर है, मगर जनवादी गीत इनकी उत्पत्ति के कारणों की सुनिश्चित तलाश करता है और इनसे मुक्ति के उपाय ढूंढता है। वैचारिक अन्तर्वस्तु की इस भिन्नता के अनुरूप जनवादी गीतों के शिल्प, रूप, तेवर और भंगिमा में भी पारंपरिक गीतों से गुणत्मक अंतर है। नवगीत के अधिकांश क्रियापद नकारात्मक और विशेषण निषेधात्मक हैं जबकि जनवादी गीत के क्रियापद सकारात्मक और विशेषण ओजगुण को उद्भासित करने वाले होते हैं। नवगीत के विम्ब प्रतीक एक सीमा तक अमूर्तन के शिकार हैं और जनवादी गीत के विम्ब प्रतीक जाने–पहचाने और जनसंघर्ष के बीच के होते हैं।

प्रश्न – रचना में कल्पना की भूमिका क्या है ? क्या वह निरपेक्ष होती है ?

उत्तर – किसी भी कलाकृति में कल्पनाशक्ति का उपयोग सोद्देश्य और वस्तु–सत्य के सापेक्ष होता है। कल्पनाशीलता कभी निरपेक्ष नहीं होती। निरपेक्ष कल्पना किसी भी रचना या कृति को अमूर्तन और भाववाद की गर्त में ढकेल देने के लिए पर्याप्त होती है। कल्पना यथार्थ

को तराशने और उसमें सौंदर्य सृष्टि का उपकरण मात्र है। यथार्थ के निरीक्षण, तुलना और विश्लेषण के लिए रचना में कल्पना–शक्ति का प्रयोग अनिवार्य है।

प्रश्न – क्या आप मानती हैं कि गीत एक सक्षम विधा है ?

उत्तर – गीत रचना में अनुभूति के साथ–साथ विचारों और समस्याओं को अभिव्यक्त करने की भरपूर क्षमता है। यह क्षमता रचनाकार की प्रतिभा और जीवन की गहरी पकड़ पर निर्भर करती है। निराला के गीत इसके प्रमाण हैं। आज के युगीन भावबोध को व्यक्त करने में यह पूरी तरह सक्षम विधा है। मौजूदा दौर के एक विशेष कालखण्ड के संपूर्ण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्षों से प्राप्त अनुभवों और आज के लहूलुहान यथार्थ को एक ही गीत–रचना 'बाइस्कोप का गीत' में उजागर करके सार्थक और सफल प्रयोग पिछले दिनों नचिकेता ने किया है। मुझे विश्वास है कि गीत की क्षमता को संदेह की निगाह से देखने वाले लोगों को इसके द्वारा करारा जवाब मिलेगा। उनके अलावा उपरोक्त तमाम गीतकारों ने आजके युग–बोध को अपने–अपने ढंग से अपनी रचनाओं में उकेरने का कामयाब यत्न किया है।

प्रश्न – लोकगीत के संदर्भ में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर – कोई भी गीत–रचना कालान्तर में लोकगीत की पंक्ति में शरीक हो सकती है। रचना के समय गीत केवल गीत होता है। गीत जब जनता की जबान पर चढ़ जाता है, रचनाकार की निजता सामूहिकता में तिरोहित हो जाती है, लेखकीय अनुभूति बहुसंख्यक जनता की अनुभूति और संस्कार में तब्दील हो जाती है, तब वह लोकगीत में शुमार होने लगता है। शिल्पगत स्खलन किसी भी रचना के लिए खतरनाक है। सुघड़ शिल्प में ढले गीत ही सार्थक और मुकम्मल होते हैं। लोकगीत भी वृहत्तर सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों से जुड़े होते हैं। वास्तव में ऐसे लोकगीत परिमाण की दृष्टि से कम हैं। दरअसल हमारे पर्व–त्योहार, शादी–ब्याह, कर्मकाण्ड आदि के अवसर पर गाए जाने वाले अधिकांश लोकगीत सामन्तवादी और पूंजीवादी समाज व्यवस्था की उपज हैं। इसलिए इनमें प्रतिक्रियावाद और प्रतिगामिता के तत्व अक्सर पाये जाते हैं। इसी अभाव की पूर्ति की खातिर आजकल लोकगीतों के

पुनर्संस्कार की जरूरत शिद्दत के साथ महसूस की जा रही है। कई गीतकार इस दिशा में निष्ठा और इमानदारी के साथ कार्यरत हैं और एक सीमा तक अपने उद्देश्य में सफल भी हो रहे हैं।

प्रश्न – लोकगीत और साहित्यिक गीतों का अन्तर बतायें।

उत्तर – लोकगीत और गाली गीत अथवा लोकभाषा में रचित बाजारू व फुटपाथी गीतों में जमीन–आसमान का फर्क है। लोकगीत में अश्लीलता का कोई स्थान नहीं है। अगर अश्लीलता का मतलब रोमानी संवेदना से है तो पहले श्लील–अश्लील की पुनर्व्याख्या करनी होगी। गीत–रचना के लिए रागात्मकता और रोमांटिकता की अनिवार्यता है। लोकगीत और साहित्यिक गीत में बहुत बड़ी विभाजक रेखा नहीं है। कई लोकगीत तो शिल्प व संदेवना की दृष्टि से इतने परिपूर्ण होते हैं कि उनके आगे साहित्यिक गीत पासंग में भी नहीं ठहरते। मैं एक बार और दुहरा दूँ कि कालान्तर में कोई भी गीत–रचना अपनी निजता खोकर और बहुसंख्यक जनता का संस्कार बनकर लोकगीत की संज्ञा से अभिहित हो सकती है। इसलिए अश्लीलता हर हालत में गीत–रचना के लिए वर्जित प्रदेश है। गीतों की लोकप्रियता का प्रमुख कारण संवेदनात्मकता, अनुगूंजात्मकता और संवाद शैली का बाहुल्य है न कि अश्लीलता का समावेश।

प्रश्न – क्या आज लोकगीत लिखे जा रहे हैं ?

उत्तर – चूंकि लोकगीतों की पहली शर्त्त लेखकीय निजबद्धता के उन्मूलन और सामूहिकीकरण की प्रक्रिया है, इसलिए लोकगीत का रचनाकार प्रायः गौण हो जाता है। ऐसा लेखकों की उपेक्षा की वजह से नहीं होता है, स्वाभाविक रूप से होता है। अगर आपका संकेत लोकभाषा में लोकधुनों के आधार पर गीत रचना से सरोकार रखने वाले रचनाकारों की ओर है तो रमेश रंजक, गोरख पांडेय, महेश्वर और विजेन्द्र अनिल का नामोल्लेख मैं जरूर करना चाहूंगी जिन्होंने अपनी क्षेत्रीय लोकभाषाओं में काफी अच्छे गीत लिखे हैं और उनके अधिकांश गीत जनता की जुबान पर चढ़कर उनके संस्कार का हिस्सा बनते जा रहे हैं। लेकिन ये गीत अभी लोकगीत नहीं बने हैं।

प्रश्न – हिन्दी गजल के बारे में आपके अभिमत क्या हैं ?

उत्तर – निस्संदेह गजल उर्दू की साहित्यिक विधा है। उर्दू साहित्य

में गजल सर्वाधिक प्राचीन लोकप्रिय और सार्थक विधा है। यह सच है कि पाकिस्तानी और हिन्दुस्तानी गायकों ने गजल को लोकप्रिय बनाने में मदद की है। मगर एक बात ध्यान देने की है कि गायक प्रायः रोमानी और आध्यात्मिक गजलों का गायन के लिये चुनाव करते हैं। यह अकारण नहीं है। दरअसल ये गायक प्रायः पेटी बुर्जुआ संस्कार से लैस हैं। हिन्दी गजल अपने प्रारंभ से ही सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करने लगी है। वह हुस्न, इश्क के खुशनुमा प्राचीर से निकलकर खेत–खलिहान होते आम आदमी के जीवन संघर्ष में शामिल हो गई है।

स्वाभाविक है कि निम्न पूंजीवादी मनोवृत्ति वाले गजल गायकों को इनमें रस नहीं मिलता। मगर वक्त आ रहा है, जब प्रगतिशील और क्रांतिकारी गजलों की ध्वनि से गली–कूचे गूंजेंगे। वह दिन ज्यादा दूर नहीं है।

(22 मार्च, 1992 के 'राँची एक्सप्रेस' में प्रकाशित)

■